इकाई 15 साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक तत्त्व–वक्रोक्ति और औचित्य

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक वक्रोक्ति तत्त्व

15.3 साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक औचित्य तत्त्व

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक वक्रोक्ति तत्त्व को जान पायेंगे।
- साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक औचित्य तत्त्व को जान पायेंगे।
- साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक तत्त्वों में प्रयुक्त तकनीकि शब्दावली को जान पायेगें।

15.1 प्रस्तावना

परिवर्तन सृष्टि का नियम है, तो सृजन मात्र का धर्म है। सर्जना की इस कड़ी में सौन्दर्य का अपना एक विशेष स्थान है। यह सौन्दर्य प्रकृति, जीवन और जगत में सर्वत्र व्याप्त है। प्रकृति और मानव के आभ्यन्तर और बाह्य सौन्दर्य से प्रेरित होकर ही काव्य सृजन होता है। भारतीय आचार्यों एवं मनीषियों ने सौन्दर्य को अपनी–अपनी दृष्टि से देखा एवं परखा है क्योंकि प्रारम्भ से ही भारत आत्मवादी रहा है। यह आत्मा आनन्दस्वरूप है और इस आत्मा को पाकर व्यक्ति आनन्दमग्न हो जाता है। काव्यामृत का पान करके मनुष्य भी आनन्दमग्न हो जाता है। काव्य के इस आनन्दस्वरूप को देखकर काव्यशास्त्रियों ने उसमें आत्म–तत्व की खोज करने का प्रयत्न किया। इसी आत्मा के सूक्ष्म–चिन्तन के अन्तर्गत अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि, रस और औचित्य को आचार्यों ने काव्य की आत्मा सिद्ध करने का प्रयास किया, जिसके फल स्वरूप छः सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इस इकाई में साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक तत्त्व वक्रोक्ति और औचित्य के अन्तर्गत वक्रोक्ति और औचित्य तत्त्व का विवेचन किया जायेगा।

15.2 साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक वक्रोक्ति तत्त्व

आचार्य कुन्तक ने 'वक्रोक्ति' को काव्यात्मा रूप में प्रतिपादित करके काव्य के समालोचनात्मक मार्ग में एक नवीन मार्ग का सृजन किया। परिणामस्वरूप उनके द्वारा वक्रोक्ति की विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत की गयी–**'वैदग्ध्यभंगीभणिति'** अर्थात् वाक्य

कुशल पुरुष अपने भावों के अभिव्यक्तिकरण के लिए अपनी वाणी में जिस भंगिमा–विशेष का आश्रयण ग्रहण करते हैं, उसे अर्थगत साम्य के आधार पर वक्रोक्ति कहा जाता है। इस प्रकार कुन्तक ने सहृदयाह्लादक तथा अलौकिक काव्य–तत्त्व को वैचित्र्य पूर्ण करते हुए 'वक्रोक्ति' संज्ञा से संज्ञित करके अपनी प्रखर प्रज्ञा के माध्यम से एक विशिष्ट सिद्धान्त को साहित्य शास्त्र में प्रवर्तित किया।

साहित्य जगत् में वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग अति प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। वक्रोक्ति शब्द की रचना (वक्र+उक्ति) से होता है, जिसका अभिप्राय शब्दार्थ का लोक व्यवहार से पृथक् टेढ़े रूप में अर्थात् भिन्न रूप से कहना है। प्रकारान्तर से जन साधारण से विलक्षण प्रकार का कथन 'वक्रोक्ति' है। प्राचीन काल में इस शब्द का प्रयोग वाक्छल, परिहास कथन, वचनविदग्धता, क्रीड़ालाप आदि अर्थो में किया जाता था। यद्यपि भारतीय साहित्य शास्त्र का प्रारम्भ आचार्य भामह से माना जाता है, तथापि उनसे पूर्व भी बाणभट्ट कृत **कादम्बरी** तथा अमरुकृत **अमरुशतकम्** में वक्रोक्ति का प्रयोग दृष्टिगत होता है–

''वक्रोक्तिनिपुणेन आख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण। (बाणभट्ट, कादम्बरी)
सा पत्युःप्रथमेऽपराधसमये सख्योपदेशं बिना।
नो जानाति सविभ्रमांगवलना वक्रोक्तिसंसूचनम्।।
(अमरुक, अमरुशतक पृ. 21)

जहाँ उसका अभिप्राय सरल उक्ति से भिन्न चातुर्य पूर्ण कथन से था किन्तु अब साहित्य जगत् में 'वक्रोक्ति' शब्द का प्रयोग अलंकार विशेष के रूप में अथवा विशिष्ट काव्य शैली के रूप में किया जाता है।

'वक्रोक्ति' शब्द का काव्यशास्त्रीय प्रयोग सर्वप्रथम भामह ने किया था। विषय व्यापकता की दृष्टि से भामह यद्यपि अलंकारवादी आचार्य थे तथापि वक्रोक्ति में शब्द और अर्थ को अनुस्यूत करके उन्होंने स्वयं को वक्रोक्तिवादी सिद्ध करने का प्रयास किया–

वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलंकाराय कल्पते।
(भामह, काव्यालंकार 5.66)

उसका कथन था कि काव्य का सौन्दर्याधायक तत्व अलंकार है और किसी भी अलंकार का अस्तित्व वक्रोक्ति के अभाव में सम्भव ही नहीं है–

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना।।
(भामह काव्यालंकार 2.85)

क्योंकि वक्रोक्ति रहित वाक्य तो काव्य न होकर वार्ता मात्र रहता है–

गतोऽस्तमर्कों भातीन्दुर्यान्तिवासाय पक्षिणः,
इत्येवमादि किं काव्यं वार्तामेनां प्रचक्षते।।
(भामह, काव्यालंकार 2.87)

उनकी दृष्टि में वक्रोक्ति शब्दालंकार या अर्थालंकार मात्र ही नहीं, अपितु वह तो अलंकारों में विद्यमान चमत्कार का नियोजन हेतु है। वक्रोक्ति का लक्षण प्रस्तुत करते हुए भामह कहते हैं कि वक्रोक्ति की स्थिति शब्द और अर्थ दोनों में होती है–

''वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः।''
(भामह, काव्यालंकार 1.36)

दूसरे शब्दो में शब्द और अर्थ की समन्वित वक्रता ही वक्रोक्ति कहलाती है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि वक्रोक्ति सम्पूर्ण अलंकारों की मूलाधार होती है। उनके अभाव में किसी भी प्रकार के अलंकार की स्थिति सम्भव नहीं–

हेतुः सूक्ष्मोऽथश्लेषश्च नालंकारतया मतः।
समुदायाऽभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः।।
(भामह, काव्यालंकार 2.86)

भामह के पश्चात् दण्डी ने वक्रोक्ति स्वरूप विवेचित किया। यद्यपि दण्डी ने भी वक्रोक्ति को सभी अलंकारों का मूल स्वीकार किया–

अलंकारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम्।
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम्।।
(दंडी, काव्यादर्श 2.220)

तथापि उनका वक्रोक्ति विवेचन भामह से कतिपय भिन्नता लिये हुए था। उन्होंने सम्पूर्ण वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया–स्वाभावोक्ति और वक्रोक्ति–

द्विधा भिन्नं स्वभावोक्ति वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्।
(दण्डी, काव्यादर्श 2.362)

पदार्थ का साक्षात् स्वरूप वर्णन करना स्वाभावोक्ति है, जिसका साम्राज्य शास्त्रादि क्षेत्रों में होता है। किन्तु वक्रोक्ति में यही वर्णन स्वाभाविक न होकर वक्रतापूर्ण होता है। वक्रोक्ति को उन्होंने अलंकार विशेष का नाम नहीं दिया अपितु उपमा आदि सभी अलंकारों का वक्रोक्ति के रूप में प्रतिपादन किया–

वक्रोक्तिशब्देनं उपमादयः संकीर्णपर्यन्ता अलंकाराः उच्यन्ते।
(दंडी, काव्यादर्श 2.8)

भामह की भाँति दण्डी ने भी वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति को पर्यायवाची मानकर अतिशयोक्ति को सभी अलंकारों का मूल माना था–

अलंकारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम्।
वागीशमहितामुक्तिमिमातिशयाह्वयाम्।।
(दण्डी, काव्यादर्श 2.226)

वामन के अनुसार वक्रोक्ति एक अर्थालंकार हैं, जिसका लक्षण है–सादृश्य के आधर पर होने वाली लक्षणा वक्रोक्ति है–**सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः। (वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति 4.3.8)**

उन्होंने इसे विशिष्ट अलंकार अवश्यमेव माना परन्तु आचार्यों की भाँति उसे शब्दालंकार न मानकर अर्थालंकार मात्र माना। इसके अतिरिक्त वामन रीतिवादी आचार्य थे। अतः उन्होंने काव्यगत सौन्दर्य वक्रोक्ति की अपेक्षा रीति पर आश्रित माना।

ध्वनिवादी आचार्यों ने वक्रोक्ति को कुछ अधिक व्यापक रूप प्रदान किया। उन्होंने 'ध्वन्यालोक वृत्ति' में वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति का पर्याय तथा समस्त अलंकारों का मूल रूप माना–

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनयाविना।।
(भामह, काव्यालंकार 2.85)

ध्वन्याचार्य अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति की पर्यायता स्वीकार करते हुए इनको काव्य सौन्दर्य का अभिव्यंजक मानते हैं उनके अनुसार सभी अलंकार अतिशयोक्ति गर्भित होते हैं तथा यह अतिशयोक्ति ही काव्य में अलौकिक शोभा को सम्पादित करती है–

यतः प्रथमं तावदतिशयोक्तिगर्भता सर्वालंकारेषु शक्यक्रिया।
कृतैव च सा महाकविभिः कामपि काव्यच्छदिं पुष्यति।।
(आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 3.37 की वृत्ति)

इस सन्दर्भ में उनका अभिमत है कि यह वही वक्रोक्ति है, जिसके द्वारा पदार्थ चमत्कृत हो उठते हैं, कवियों को इसके लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

काव्यप्रकाश प्रणेता आचार्य मम्मट का वक्रोक्ति वर्णन आनन्दवर्धन कृत वक्रोक्ति से मिलता जुलता है। यद्यपि उन्होंने वक्रोक्ति को शब्दालंकार मानकर उसके श्लेष और काकु रूप से दो भेद किये–

यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा।।
(मम्मट, काव्यप्रकाश 9.78)

तथापि विशेष नामक अलंकार विवेचन में वक्रोक्ति रूप अतिशयोक्ति को समस्त अलंकारों को प्राण रूप में प्रतिपादित किया–''**सर्वत्र एवविधाविषयेऽतिशयोक्तिरेव प्राणत्वेनावतिष्ठते तां बिना प्रायेणअलंकारत्वायोगात्।'' (मम्मट, काव्यप्रकाश 10.36 की वृत्ति)**

मम्मटाचार्य के अनन्तर भोज ने वक्रोक्ति को और अधिक व्यापक रूप प्रदान किया। उनके शब्दों में काव्य सौन्दर्य तीन प्रकार का होता है–वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वाभावोक्ति–**वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मयम्। (भोज, सरस्वतीकण्ठाभरण 58)**

उपमा आदि अलंकारों का प्राधान्य होने पर वक्रोक्ति, गुणों का प्राधान्य होने पर स्वाभावोक्ति तथा जहाँ विभावो, अनुभावों तथा संचारी भावों के संयोग से रस निष्पत्ति होती हैं, वहाँ रसोक्ति होती है–**त्रिविधा खलु अलंकारवर्गः वक्रोक्तिः स्वभावोक्ति रसोक्तिः इति। तत्रोपमाद्यलंकार प्राधान्ये वक्रोक्ति सोऽपि गुण प्राधान्ये स्वभावोक्तिः विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगादरसनिष्पत्तौ रसोक्तिः इति। (भोज, श्रृंगार प्रकाश 211)**

कुन्तक प्रणीत वक्रोक्ति विवेचन भामह से पूर्णरूपेण प्रभावित था क्योंकि वक्रोक्ति को जो सम्मान भामह आचार्य द्वारा दिया गया था, वह सम्मान उनके पश्चात् कुन्तक के द्वारा ही दिया गया। उन्होंने वक्रोक्ति को काव्यगत आधार भूत तत्त्व प्रमाणित किया

तथा स्पष्ट शब्दों में कहा कि वक्रोक्ति के अभाव में काव्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वक्रोक्ति स्वरूप को दृष्टिगत करते हुए उन्होंने वक्रोक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रसिद्ध कथन से भिन्न विचित्र अभिधा अर्थात् वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है–

वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा।
(कुन्तक, वक्रोक्ति जीवित 1.10 की वृत्ति)

वस्तुतः विचित्र अभिधा को ही कुन्तक ने वक्रोक्ति कहा है। यहाँ विचित्र शब्द का तात्पर्य है प्रसिद्ध कथन शैली से भिन्न शैली का प्रयोग तथा प्रसिद्ध से उनका अभिप्राय शास्त्र और व्यवहार में प्रयुक्त शैली से है। इस विचित्रोक्ति अथवा वक्रोक्ति की व्याख्या कुन्तकाचार्य ने इस प्रकार की है–शास्त्र आदि में प्रसिद्ध शब्द अर्थ के प्रयोग से भिन्न प्रयोग–**'शास्त्रादिप्रसिद्धशब्दार्थोपनिबन्धव्यतिरेकि' (कुन्तक, वक्रोक्तिजीवित 1.7 की वृत्ति)** लोक आदि में प्रसिद्ध मार्ग से भिन्न शब्दार्थ का प्रयोग **'प्रसिद्ध प्रस्थानव्यतिरेकि वैचित्र्यम्' (कुन्तक, वक्रोक्ति जीवित 1.18 की वृत्ति)** लोक में प्रसिद्ध शब्द–अर्थ के व्यवहार मार्ग को अतिकान्त करने वाला शब्दार्थ का प्रयोग–**'अतिकान्तप्रसिद्धव्यवहारसरणिः' कुन्तक वक्रोक्ति जीवित 1.19 की वृत्ति** अर्थात् कुन्तक द्वारा दी गयी वक्रोक्ति की परिभाषा को परवर्ती काव्याचार्यों का भी समर्थन प्राप्त हुआ। **व्यक्ति–विवेक** के रचयिता महिमभट्ट का कथन है कि शास्त्रादि के प्रसिद्ध मार्ग का परित्याग करके चमत्कार की सिद्धि के लिये उसी अर्थ को जब प्रकारान्तर से कहा जाता है उसी को वक्रोक्ति कहते है–

''प्रसिद्धमार्गमुत्सृज्य यत्र वैचित्र्यसिद्धये।
अन्यर्थवोच्येत सोऽर्थः सा वक्रोक्तिरुदाहृता।।''
(महिमभट्ट व्यक्तिविवेक 1.66)

ध्वनिवादी आचार्यों ने भी काव्य को लोकोत्तर वर्णन में निपुण कविकर्म बताया–**'लोकोत्तरवर्णननिपुणकविकर्म' (मम्मट, काव्यप्रकाश 1.2 की वृत्ति)**

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुन्तक विशिष्ट सौन्दर्य वादी आचार्य है। उन्होंने शब्द और अर्थ को अलंकार्य मानकर वक्रोक्ति को उसका अलंकार माना है।

15.3 साहित्य में प्रमुख सौन्दर्यात्मक औचित्य तत्त्व

चारुत्व–प्रवाह में जो स्थान गुण, अलंकार, वक्रोक्ति आदि का है, वही स्थान अनुभूति प्रवाह में औचित्य का है, जिसका रसादि तत्त्वों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। रस सिद्ध काव्य का प्राण औचित्य ही है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के शरीर पर हारादि आभूषण उनके बाह्य सौन्दर्य के प्रसाधक होते हैं, किन्तु सत्य, शीलत्वादि गुण आभ्यन्तर सौन्दर्य के प्रकाशक होते है, उसी प्रकार काव्य शरीर में औचित्य की भी आन्तरिक तथा अविनश्वर सत्ता है। काव्य में गुण, अंलकार, रीति, रस आदि उसी स्थिति में चमत्कार अथवा रमणीयता उत्पन्न करने में समर्थ हैं, जबकि उनका प्रतिपादन औचित्य पूर्ण ढंग से किया गया हो। औचित्य के अभाव में कवि उपहास और निन्दा का पात्र होता है। औचित्य की प्रतिष्ठा क्षेमेन्द्र ने भगवान विष्णु के माध्यम से की थी। विष्णु ही परम औचित्य के प्रतिष्ठापक है–

अच्युताय नमस्तस्मै परमौचित्यकारिणे।

(औचित्यविचारचर्चा–1)

काव्यगत औचित्य का विचार करने के लिये ही क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' नामक ग्रन्थ की रचना की–

औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।

रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना।।

(औचित्यविचारचर्चा–3)

औचित्य का लक्षण क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार किया है कि–

उचित प्राहुराचार्याः सदृश किलं तस्य तत्।

उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।।

(औचित्यविचारचर्चा–7)

जो वस्तु जिसके अनुरूप होती है, उसको आचार्य उचित कहते हैं। उचित का जो भाव है, वह औचित्य कहलाता है। यह औचित्य काव्य में ही नहीं लोक में भी सब स्थानों पर व्याप्त है। काव्यगत औचित्य की विशेषतायें इस प्रकार है–

- यह काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता है।
- यह काव्य में आस्वाद्यता लाता है।

यह रस का जीवितभूत है। काव्य में औचित्य की इस महत्वपूर्ण स्थिति को दृष्टिगत करते हुए क्षेमेन्द्र कहते है कि 'अलंकार तो अलंकार ही हैं, और गुण तो गुण ही है, परन्तु रस–सिद्ध काव्य का अविनाशी जीवन तो औचित्य ही है–

अलंकारास्त्वलङ्काराः गुणा एव गुणाः सदा।

औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरं काव्यजीवितम्।।

(क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा कारिका 5)

वस्तुतः औचित्य काव्य का महत्वपूर्ण तत्त्व है, जो काव्य के प्रत्येक अंग में व्याप्त रहता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इस तथ्य की ओर सदा दृष्टि रखी है कि विभिन्न तत्त्वों का विनियोजन औचित्य से युक्त होने पर काव्य में सौन्दर्य का आधायक होता है।

जिस प्रकार लोक में औचित्य से युक्त व्यवहार एक व्यक्ति की प्रतिष्ठा में वृद्धि करता है तथा व्यवहार के अनौचित्य से वही व्यक्ति अनादर तथा हास्यास्पदता का भागी होता है, उसी प्रकार काव्य में रस, अलंकार, गुण, रीति आदि तत्त्व उसी अवस्था में चमत्कार, रमणीयता या सौन्दर्य के उत्पादक होते हैं, जब कि उनका विनियोजन औचित्यपूर्ण होता है। औचित्य के अभाव में कवि उपहास और निन्दा का पात्र होता है। उन्होंने कहा है कि अलंकार तभी अलंकार होते हैं, जबकि वे औचित्य से च्युत नहीं होते–

उचितस्थानविन्यासादलङ्कृतिरलङ्कृतिः।

औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः।।

(क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा कारिका 6)

आचार्य क्षेमेन्द्र का अभिमत है कि औचित्य काव्य के प्रत्येक अंग में होना चाहिये। काव्य में जिस स्थान पर औचित्य का अभाव होता है, वहीं रस का भङ्ग होकर अरुचि उत्पन्न होती है। सौन्दर्य की भावना इसी औचित्य पर आधारित है। यदि कोई सुन्दरी तरुणी कण्ठ में मेखला पहल ले, नितम्बों पर हार धारण कर ले, हाथों में नूपुर पहन ले और चरणों में केयूर डाल ले, तो कौन उसका उपहास नहीं करेगा? इसी प्रकार यदि कोई वीर पुरुष विनम्र शरणागत पर तो वीरता दिखाए तथा शत्रु पर करुणा को प्रदर्शित करे तो कौन उसका उपहास नहीं करेगा? यही स्थिति काव्य में है, जिसमें कि औचित्य के अभाव में न तो अलंकार और ना ही गुण रमणीयता तथा रोचकता के उत्पादक होते हैं–

कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा

पाणौ नूपुराबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।

शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यताम्

औचित्येन बिना रुचिं प्रतनुते नालङ्कृतिनो गुणाः।।

(औचित्यविचारचर्चा–6 की व्याख्या से।)

केवल अलंकार और गुण ही नहीं अपितु रस भी काव्य में तभी रमणीयता उत्पन्न करता है, जबकि उसका विन्यास औचित्य से पूर्ण होता है।

काव्य के प्रत्येक अंग में औचित्य के व्याप्त होने के कारण ही आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस तत्व को काव्य की आत्मा या जीवन कहा है। औचित्य को काव्य का जीवन कहने का रहस्य यही है कि रस में रसत्व, अलंकार में अलंकारत्व, गुण में गुणत्व और रीति में रीतित्व तभी होते हैं, जबकि इनका संविधन औचित्यपूर्ण होता है। औचित्य के अभाव में ये तत्व विरसता ही उत्पन्न करेंगे तथा उस काव्य में काव्यत्व नहीं होगा।

काव्य के प्रत्येक अंग में औचित्य निहित रहता है। इस दृष्टि से क्षेमेन्द्र का कथन है कि औचित्य के भेद अनन्त होते है और उनकी गणना नहीं की जा सकती। कुछ भेदों की उन्होंने गणना की है और उनके उदाहरण दिये हैं। शेष के लिये उनका कहना है कि इनकी कल्पना स्वयं कर लेनी चाहिये–

अन्येषु काव्याङ्गेष्वनयैव दिशा स्वयमौचित्यमुत्प्रेक्षणीयम्।

तदुदाहरणान्यानन्त्यान्न प्रदर्शितानीत्यलमतिप्रसङ्गेन।।

(औचित्यविचारचर्चा–39)

क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थों में औचित्य के 27 भेदों का विवेचन किया है–

पदे वाक्ये प्रबन्धार्थे गुणऽलङ्करणे रसे।

क्रियायां कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे।।

उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते।

तत्वे सत्त्वेप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे।।

प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्न्यथाशिषि।

काव्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम्।।

(औचित्यविचारचर्चा–8/9–10)

अर्थात् पद, वाक्य, प्रबन्ध, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिङ्ग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत, तत्व, सत्व, अभिप्राय, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम और आशिष ये सत्ताइस भेद है।

इस प्रकार काव्य के प्रत्येक अंग में औचित्य के व्याप्त रहने से औचित्य के अनेक भेद हो सकते हैं। क्षेमेन्द्र ने मुख्य 27 भेदों का कथन करके कह दिया कि उनकी कल्पना विचारक को स्वयं कर लेनी चाहिये।

औचित्य काव्य के प्रत्येक अंग में व्याप्त रहता है, इस विषय में किसी आचार्य ने अपना विमत प्रकट नहीं किया है। काव्य में औचित्य की अनिवार्यता का प्रतिपादन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सभी आचार्यों ने किया था। 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता भरत का मन्तव्य था कि नाटक के अभिनय में लोक से सिद्ध धर्मों का ही ग्रहण करना चाहिये–

''लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम्।

तस्मान्नाट्यप्रयोगेषु प्रमाणं लोक इष्यते।।''

(भरत, नाट्यशास्त्र 26.113)

क्योंकि प्रकृतियों के शील अनेक प्रकार के होते हैं, अतः नाट्य में उनका प्रयोग लोक प्रामाण्य से करना ही उचित है–

नानाशीलाः प्रकृतयः शीलं नाट्ये प्रतिष्ठितम्।

तस्माल्लोकप्रमाणं हि कर्तव्यं नाट्योक्तृभिः।।

(भरत, नाट्यशास्त्र 26.119)

नाट्यशास्त्र में यद्यपि औचित्य पद का व्यवहार नहीं किया गया है, तथापि नाटक के अभिनय के लिये जो निर्देश भरत मुनि ने दिये हैं, उनमें औचित्य का क्रियात्मक महत्व दृढ़ता से प्रतिपादित किया गया है। भरत का कथन है कि नाटक के पात्रों की वेशभूषा उनके देश और आयु के अनुरूप होनी चाहिये। जो वेश देश के अनुरूप नहीं है, वह शोभा का आधायक नहीं हो सकता, जैसे कि वक्ष और मणिबन्ध पर मेखला को पहनना उपहास का कारण होता है–

अदेशजो हि वेशस्तु न शोभां जनयिष्यति।

मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते।।

(भरत, नाट्यशास्त्र 23.69)

अभिनय में वेशभूषा आयु के अनुसार होनी चाहिये, गति एवं क्रियाएँ वेश के अनुसार होनी चाहियें, संवाद आदि गति प्रचार के अनुरूप होने चाहिये और अभिनय को संवाद आदि के अनुरूप होना चाहिये–

वयोऽनुरूपः प्रथमस्तुवेशो वेशानुरूपस्तु गतिप्रचारः।

गतिप्रचारानुगतं च पाठ्यं पाठयानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः।।

(भरत, नाट्यशास्त्र 14.68)

भामह का कथन था कि काव्य में औचित्य सबसे बड़ा गुण है। सबसे बड़ा दोष उन्होंने अनौचित्य को माना था। दोषों का विचार करते हुये वे लिखते हैं कि दुष्ट उक्ति भी सन्निवेश की विशेषता से उसी प्रकार शोभाजनक हो जाती है, जिस प्रकार मालाओं के मध्य में गूंथा गया नील पलाश शोभाजनक होता है–

सन्निवेशषविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते।

नीलं पलाशमाबद्धमन्तराले स्रजामिव।।

(भामह, काव्यालंकार)

जिस प्रकार कामिनी के नयन में लगाया गया काला काजल उसके सौन्दर्य की वृद्धि करता है, उसी प्रकार असाधु वस्तु भी आश्रय के सौन्दर्य से शोभा का आधान करती है–

किचिंदाश्रयसौन्दर्याद्धत्ते शोभामसाध्वपि।

कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवांजनम्।।

(भामह, काव्यालंकार 1.55)

पुनरुक्ति को यद्यपि दोष माना गया है, तथापि भय, शोक, असूया, हर्ष और विस्मय के भावों की अभिव्यक्ति में वह दोष नहीं होता है–

भयशोकाभ्यसूयासु हर्षविस्मययोरपि।

यथाह गच्छ गच्छेति पुनरुक्तं न तद् विदुः।।

(भामह काव्यालंकार 4.14)

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में **'न खलु न खलु बाणः'** पद्य में पुनरुक्ति से सौन्दर्य में वृद्धि ही हुई है। गुण और दोष के विधान में औचित्य और अनौचित्य की कारणता को दण्डी ने भी प्रतिपादित किया था। उनका कथन है कि समुदायार्थ शून्य वाक्य में तो अपार्थ दोष होता है, परन्तु उन्मत्तों, मत्तों और बालकों के आलाप में यह दोष नहीं रहता–

समुदायार्थशून्यं यत् तदपार्थमितीष्यते।
उन्मत्तमत्तबालानामुक्तेरन्यत्र दुष्यति।।
(काव्यादर्श 4.5)

परस्पर विरुद्ध अर्थ को प्रकट करने वाले वाक्य में व्यर्थ दोष होता है, परन्तु किसी वस्तु के अत्यधिक आसक्ति के प्रसङ्ग में यह गुण हो जाता है–

अस्ति काचिदवस्थां सा साभिषङ्गस्य चेतसः।
यस्यां भवेदभिमता विरुद्धार्थाऽपि भारती।।
(काव्यादर्श 4.10)

देश, काल, कला, लोक, न्याय तथा आगम से विरुद्ध कथन को काव्य में दण्डी ने विरोध दोष बताया है। परन्तु विशेष परिस्थितियों में कवि कौशल के कारण यह विरोघ भी गुण बन जाता है–

विरोधः सकलोऽप्येषः कदाचित् कविकौशलात्।

उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथीं विगाहते।।

(काव्यादर्श 4.57)

अलंकारवादी आचार्य काव्य की रचना में औचित्य को विशेष महत्व देते हैं। अनुप्रास अलंकार के प्रयोग का आधार उन्होंने औचित्य को ही स्वीकार किया था–

एतः प्रयत्नादधिगम्य सम्यगौचित्यमालोच्य तथार्थसंस्थाम्।

मिश्राः कवीन्द्रैरघनाल्पदीर्घाः कार्या मुहुश्चैव गृहीतमुक्ताः।।

(रुद्रट, काव्यालंकार 2.32)

यमक अलंकार के प्रयोग में भी उन्होंने औचित्य को महत्व दिया। यमक अलंकार को प्रयोग वही कवि कर सकता है, जो औचित्य का पारखी होता है–

इति यमकविशेषं सम्यगालोचयद्भिः सुकविभिरभियुक्तैर्वस्तु चौचित्यविद्भिः।

सुविहितपदभङ्गं सुप्रसिद्धाभिधानं तदनु विरचनीयं सर्गबन्धेषु भूम्ना।।

(रुद्रट,काव्यालंकार 3.59)

रुद्रट ने दोषों की विवेचना करते हुये बताया कि ये अनौचित्य के कारण ही होते हैं। देश, कुल, जाति, विद्या, धन, आयु, स्थान और पात्रों के व्यवहार, आकार, वेश और वचनों में अनौचित्य का होना ही ग्राम्यत्व दोष है–

ग्राम्यत्वमनौचित्यं व्यवहाराकारवेशवचनानाम्।

देशकुलजातिविद्यावित्तवयः स्थानपात्रेषु।।

(रुद्रट, काव्यालंकार 3.59)

उन्होंने अलंकार, गुण, रीति, रस आदि सभी तत्वों के विनियोजन में औचित्य की अनिवार्यता प्रतिपादित की है। काव्य में अलंकारों का सन्निवेश रसोचित्य की दृष्टि से ही करना चाहिए। काव्य में रस ही प्रधान अलंकार्य है तथा रस आदि को लक्ष्य कर नियोजित अलंकार ही अलंकारत्व को प्राप्त करने में समर्थ है–

रसाभावादि तात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्।

अलंकृतीनां सर्वासामलङ्कारत्वसाधनम्।।

(आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक 3.6)

आनन्दवर्धन न अलंकारों के साथ ही गुण, रीति, वृत्ति, संघटना, प्रबन्ध और रसौचित्य का भी प्रतिपादन किया। उन्होंने अनौचित्य को रस भंग का कारण स्वीकार करते हुए लिखा 'अनौचित्य ही रस भंग का प्रधान कारण है, अनुचित वस्तु के सन्निवेश से काव्य में रस परिपाक सम्भव नहीं–

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्यकारणम्।

प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।।

(आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक पृष्ठ 302)

वृत्यौचित्य के सम्बन्ध में आनन्दवर्धन ने कहा है कि रसानुकूल शब्द और अर्थ का जो औचित्य पूर्ण व्यवहार है, वह दो प्रकार की वृत्ति ही है–

रसाद्यनुगुणत्वेन व्यवहारोऽर्थशब्दयोः।

औचित्यवान् यस्ता एता वृत्तयो द्विविधा स्थिताः।।

(आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 3.33)

अनुचित रूप से नियोजित होने पर ये वृत्तियाँ रस–भंग का कारण होती है–**'यदि वा वृत्तीनां भरतप्रसिद्धानां कैशिक्यादीनां काव्यालंकारान्तरप्रसिद्धानां उपनागरिकाद्यानां वा यदनौचित्य तदपि रसभंगहेतुः' (आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 3.33 की वृत्ति)**

उन्होंने प्रबन्धौचित्य को भी अनिवार्यता प्रतिपादित की है तथा अलंकार, गुण, रीति, संघटना और प्रबन्ध इन सभी तत्वों का नियोजन रसोचित्य की दृष्टि से किया। वही रचना सौन्दर्य युक्त है, जिसमें औचित्य निबन्धन के अनुकूल होता है–

विभावभावानुभावसंचार्यौचित्यचारुणः।

विधिः कथाशरीरस्य वृत्तस्यसोत्प्रेक्षितस्य च।।

इतिवृत्तवशायातां त्यक्ताऽननुगुणां स्थितिम्।

उत्प्रेक्ष्याभ्यन्तराभीष्ट रसोचित कथोन्नयः।।

(आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 3.67)

रसानुकूल शब्द और अर्थ का नियोजन ही महाकवि का मुख्य कर्म होता है–

वाच्यानां वाचकानां च यदौचित्येन योजनम्।

रसादिविषयेणैतद् मुख्यं कर्म महाकवेः।।

(आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 3.32)

इस प्रकार आनन्दवर्धन ने औचित्य सिद्धान्त को व्यापक रूप प्रदान किया। आनन्दवर्धन के टीकाकार अभिनव गुप्त ने भी औचित्य की महत्ता को स्वीकार किया है। उनका मत था कि अलंकार्य रस को अनुचित रूप से अलंकृत करने वाले अलंकारों का ही काव्य में अनौचित्य होता है। यथा मृत शरीर पर स्वर्णाभूषण हास्यास्पदता को प्राप्त होते हैं–**तथाहि अचेतनं शवशरीरं, कटकादियुक्तं हास्यावहं भवति। अलंकार्यस्याभावात्। यतिशरीरं कटकादियुक्तं हास्यावहं भवति अलंकार्यस्यानौचित्याद्।**

(आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 2.6 वा लोचन टीका)

रस ध्वनि के साथ औचित्य का नित्य सम्बन्ध है तथा औचित्य रस ध्वनि का प्राणभूत

है। इसका अभिनव गुप्त ने स्पष्ट निर्देश किया था–**उचितशब्देन रसविषयमौचित्यं भवतीति दर्शयन् रसध्वनेः जीवितत्त्वं सूचयति तदभावे हि किमपेक्षया इदमौचित्यं नाम सर्वत्रोद्घोषयते इति भावः।**

(आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 3.6)

वक्रोक्तिकार कुन्तक ने 'वक्रोक्ति जीवित' में वक्रोक्ति को काव्य जीवित स्वीकार करते हुए भी औचित्य की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया अथवा उनके अनुसार काव्य का प्राण तत्व तो वक्रता ही है, किन्तु वक्रता का मूलाधार औचित्य ही है। वक्ता या श्रोता के अति मधुर स्वभाव द्वारा वाच्य वस्तु को सर्वथा आच्छादित कर दिया जाना भी औचित्य ही है–

यत्र वक्तुः प्रमातुर्वा वाच्यं षोभातिशायिना।

आच्छाद्यते स्वभावेन तदप्यौचित्यमुच्यते।।

(कुन्तक, वक्रोक्ति जीवित 1.54)

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के सिद्धांत की स्थापना करके इस तत्व को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिपादित किया था।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र का मन्तव्य है कि औचित्य ही काव्य का प्राणरूप है। जिस काव्य में उसका जीवितभूत औचित्य नहीं हैं, उसमें अलंकारों तथा गुणों का विनियोजन सर्वथा व्यर्थ है–

काव्यास्यामलङ्कारैः कि मिथ्यागणितैर्गुणेः।

यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृश्यते।।

(औचित्यविचारचर्चा–4)

अलंकार तो अलंकार ही हैं और वे बाह्य उपकरण हैं। गुण यद्यपि अन्तरङ्ग तत्व हैं, तथापि वे गुण ही हैं और प्राणों के प्रतिष्ठाता नहीं है। परन्तु रसों से निर्विष्ट काव्य का स्थिर जीवित तत्व तो औचित्य ही है।

बोध प्रश्न–1

क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइयें

i. वक्रोक्ति का तात्पर्य साहित्य में क्या है? (वैदग्ध्यभंगीभणिति/अभिधा)

ii. वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम क्या है? (कुन्तक/अभिनवगुप्त)

iii. वक्रोक्तिजीवितम् किसकी रचना है? (कुन्तक/मम्मट)

ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(i) औचित्य सम्प्रदाय के समर्थक.....है। (अभिनवगुप्त/भामह)

(ii) औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक..... हैं। (क्षेमेन्द्र/अभिनवगुप्त)

(iii) औचित्यविचारचर्चा रचना .....हैं। (क्षेमेन्द्र/अभिनवगुप्त)

बोध प्रश्न–2

कुन्तक के मत में वक्रोक्ति सौन्दर्यात्मक तत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

क्षेमेन्द्र के मत में औचित्य सौन्दर्यात्मक तत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

अभ्यास प्रश्न

वक्रोक्ति नामक सौन्दर्यात्मक तत्त्व पर विस्तृत निबन्ध लिखिए।

15.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई में साहित्य के प्रमुख सौन्दर्यात्मक तत्त्व वक्रोक्ति एवं औचित्य के अन्तर्गत प्रथमतः वक्रोक्ति का विवेचन किया गया है क्योंकि काव्य में सौन्दर्य या चमत्कार वक्रता के माध्यम से ही सम्भव है। कुन्तक ने वर्ण सौन्दर्य से लेकर प्रबन्ध सौन्दर्य तक वक्रता (वैचित्र्य) या चमत्कार का ही प्रभाव प्रदर्शित होता है इसलिए विशिष्ट वक्र उक्ति या चमत्कारी उक्ति ही कुन्तक के अनुसार काव्य की आत्मा है। इसके पश्चात् साहित्य के प्रमुख सौन्दर्यात्मक तत्त्व औचित्य का विवेचन करते हुए कहा है कि औचित्य का अभाव होने से भी काव्य का सारा आनन्द समाप्त हो जाता है। कोई भी रचना अलंकार, रस, गुणादि से कितनी ही अलंकृत क्यों न हो, किन्तु यदि उसमें औचित्य नहीं है, तो उसका समस्त सौन्दर्य समाप्त हो जाता है और वह रचना किसी भी स्थिति में सहृदयजन को चमत्कृत नहीं कर सकती अर्थात् केवल मात्र काव्य में ही नहीं अपितु कला के क्षेत्र में भी औचित्य का स्थान महत्त्वपूर्ण है । वही चित्र रोचक तथा रमणीय कहा जा सकता है, जिसमें चित्रित व्यक्तियों के अंग प्रत्यंग में, रूप–रंग में पारस्परिक अनुकूलता हो और औचित्य का सद्भाव हो।

15.4 शब्दावली

चारुत्व – शोभा

रमणीयता – सौन्दर्य

सौन्दर्य – सुन्दरता

औचित्य – उचित का भाव

अभिव्यंजक – विशेष रूप से व्यंजित करने वाला

आधायक – विशेष रूप से धारण करने वाला

पलाश – फूल

मेखला – करधनी

वक्ष – हृदयस्थल

15.5 कुछ उपयोगी पुस्तके

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र व्याख्या. व्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली,1973
- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा–परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुकनाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय, चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 2007
- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वर नाथ मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979
- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद् काशी वि. सं. 2007
- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुवेर्दी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं,लखनऊ,

- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

ENGLISH REFERENCE

(1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored Aspects of the Rasa Theory,**vidyanidhi Prakashan, ed.1906

(2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**.,Firma KLM PVT Ltd.Calcutta,1976.

(3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta;** chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1968

(4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**,MLBD,Delhi,f.ed. 1961

(5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928

(6) V.Raghvan, **The Number of Rasas,** University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940

(7) V.Raghvan, **Some Concepts of Alankar Shastras**, Adyar Library, Adyar, 1942

15.6 बोध/प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

क) (i) वैदग्ध्यभंगीभणिति (ii) कुन्तक (iii) कुन्तक

ख) (i) अभिनवगुप्त (ii) क्षेमेन्द्र (iii) क्षेमेन्द्र

बोध प्रश्न–2

क) आचार्य कुन्तक ने काव्यात्मा रूप में प्रतिपादित करके काव्य के समालोचनात्मक मार्ग में एक नवीन मार्ग का सृजन किया। परिणाम स्वरूप उनके द्वारा वक्रोक्ति की विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत की गयी–**वैदग्ध्यभंगीभणिति** अर्थात् वाक्य कुशल पुरुष अपने भावों के अभिव्यक्तिकरण के लिए अपनी वाणी में जिस भंगिमा–विशेष का आश्रयण ग्रहण करते हैं, उसे अर्थगत साम्य के आधार पर वक्रोक्ति कहा जाता है। इस प्रकार कुन्तक ने सहृदयाह्लादक तथा अलौकिक काव्य–तत्त्व को वैचित्र्य पूर्ण करते हुए 'वक्रोक्ति' संज्ञा से संज्ञित करके अपनी प्रखर प्रज्ञा के माध्यम से एक विशिष्ट सिद्धान्त को साहित्य शास्त्र में प्रवर्तित किया। साहित्य जगत् में वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग अति प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। वक्रोक्ति शब्द की रचना (वक्र+उक्ति) से होता है, जिसका अभिप्राय है–शब्दार्थ का लोक व्यवहार से पृथक् टेढ़े रूप में अर्थात् भिन्न रूप से कहना। प्रकारान्तर से जन साधारण से विलक्षण प्रकार का कथन वक्रोक्ति है। प्राचीन काल में इस शब्द का प्रयोग वाक्छल, परिहास कथन, वचन विदग्धता, क्रीड़ालाप आदि अर्थो में किया जाता था। यद्यपि भारतीय साहित्य शास्त्र का प्रारम्भ आचार्य भामह से माना जाता है, तथापि उनसे पूर्व भी बाणभट्ट कृत **कादम्बरी** तथा अमरु कृत **अमरुशतकम्** वक्रोक्ति का प्रयोग दृष्टिगत होता है–**वक्रोक्तिनिपुणेन आख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण। (बाणभट्ट, कादम्बरी)**

सा पत्युःप्रथमेऽपराध्समये सख्योपदेशं बिना।

नो जानाति सविभ्रमांगवलना वक्रोक्तिसंसूचनम्।।

(अमरु, अमरुशतक पृ. 21)

जहाँ उसका अभिप्राय सरल उक्ति से भिन्न चातुर्य पूर्ण कथन से था किन्तु अब साहित्य जगत् में 'वक्रोक्ति' शब्द का प्रयोग अलंकार विशेष के रूप में अथवा विशिट काव्य शैली के रूप में किया जाता है। वक्रोक्ति स्वरूप को दृष्टिगत करते हुए उन्होंने वक्रोक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रसिद्ध कथन से भिन्न विचित्र अभिधा अर्थात् वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है–**वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। (कुन्तक, वक्रोक्ति जीवित 1.10 की वृत्ति)**

वस्तुतः विचित्र अभिधा को ही कुन्तक ने वक्रोक्ति कहा है। यहाँ विचित्र शब्द का तात्पर्य है प्रसिद्ध कथन शैली से भिन्न शैली का प्रयोग तथा प्रसिद्ध से उनका अभिप्राय शास्त्र और व्यवहार में प्रयुक्त शैली से है। इस विचित्रोक्ति अथवा वक्रोक्ति की व्याख्या कुन्तकाचार्य ने इस प्रकार की है–शास्त्र आदि में प्रसिद्ध शब्द अर्थ के प्रयोग से भिन्न प्रयोग–'**शास्त्रादिप्रसिद्धशब्दार्थोपनिबन्धव्यतिरेकि' (कुन्तक, वक्रोक्तिजीवित 1.7 की वृत्ति)** लोक आदि में प्रसिद्ध मार्ग से भिन्न शब्दार्थ का प्रयोग **'प्रसिद्ध प्रस्थानव्यतिरेकि वैचित्र्यम्' (कुन्तक, वक्रोक्ति जीवित 1.18 की वृत्ति)** लोक में प्रसिद्ध शब्द–अर्थ के व्यवहार मार्ग को अतिकान्त करने वाला शब्दार्थ का प्रयोग–'**अतिकान्तप्रसिद्धव्यवहारसरणिः' कुन्तक वक्रोक्ति जीवित 1.19 की वृत्ति**

ख) चारुत्व–प्रवाह में जो स्थान गुण, अलंकार, वक्रोक्ति आदि का है, वही स्थान अनुभूति प्रवाह में औचित्य का है, जिसका रसादि तत्त्वों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। रस सिद्ध काव्य का प्राण औचित्य ही है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के शरीर पर हारादि आभूषण उनके बाह्य सौन्दर्य के प्रसाधक होते हैं, किन्तु सत्य, शीलत्वादि गुण आभ्यन्तर सौन्दर्य के प्रकाशक होते है, उसी प्रकार काव्य शरीर में औचित्य की भी आन्तरिक तथा अविनश्वर सत्ता है। काव्य में गुण, अंलकार, रीति, रस आदि उसी स्थिति में चमत्कार अथवा रमणीयता उत्पन्न करने में समर्थ हैं, जबकि उनका प्रतिपादन औचित्य पूर्ण ढंग से किया गया हो। औचित्य के अभाव में कवि उपहास और निन्दा का पात्र होता है। काव्य में औचित्य की इस महत्वपूर्ण स्थिति को दृष्टिगत करते हुए क्षेमेन्द्र कहते है कि 'अलंकार तो अलंकार ही हैं, और गुण गुण ही है, परन्तु रस–सिद्ध काव्य का अविनाशी जीवित तो औचित्य ही है–

अलंकारास्त्वलङ्काराः गुणा एव गुणाः सदा।

औचित्यं रस सिद्धस्य स्थिरं काव्यजीवितम्।।

(क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा कारिका 5)

वस्तुतः औचित्य काव्य का महत्वपूर्ण तत्त्व है, जो काव्य के प्रत्येक अंग में व्याप्त रहता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इस तथ्य की ओर सदा दृष्टि रखी है कि विभिन्न तत्त्वों का विनियोजन औचित्य से युक्त होने पर काव्य में सौन्दर्य का आधायक होता है। जिस प्रकार लोक में औचित्य से युक्त व्यवहार एक व्यक्ति की प्रतिष्ठा में वृद्धि करता है तथा व्यवहार के अनौचित्य से वही व्यक्ति अनादर तथा

हास्यास्पदता का भागी होता है, उसी प्रकार काव्य में रस, अलंकार, गुण, रीति आदि तत्त्व उसी अवस्था में चमत्कार, रमणीयता या सौन्दर्य के उत्पादक होते हैं, जब कि उनका विनियोजन औचित्यपूर्ण होता है। औचित्य के अभाव में कवि उपहास और निन्दा का पात्र होता है। उन्होंने कहा है कि अलंकार तभी अलंकार होते हैं, जबकि वे औचित्य से च्युत नहीं होते–

उचितस्थानविन्यासादलङ्कृतिरलङ्कृतिः।

औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः।।

(क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा कारिका 6)

आचार्य क्षेमेन्द्र का अभिमत है कि औचित्य काव्य के प्रत्येक अंग में होना चाहिये। काव्य में जिस स्थान पर औचित्य का अभाव होता है, वहीं रस का भङ्ग होकर अरुचि उत्पन्न होती है। सौन्दर्य की भावना इसी औचित्य पर आधारित है। यदि कोई सुन्दरी तरुणी कण्ठ में मेखला पहल ले, नितम्बों पर हार धारण कर ले, हाथों में नूपुर पहन ले और चरणों में केयूर डाल ले, तो कौन उसका उपहास नहीं करेगा? इसी प्रकार यदि कोई वीर पुरुष विनम्र शरणागत पर तो वीरता दिखावे तथा शत्रु पर करुणा को प्रदर्शित करे तो कौन उसका उपहास नहीं करेगा? यही स्थिति काव्य में है, जिसमें कि औचित्य के अभाव में न तो अलंकार और ना ही गुण रमणीयता तथा रोचकता के उत्पादक होते हैं–

कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा

पाणौ नूपुराबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।.....(औचित्यविचारचर्चा–6 की व्याख्या से।)

केवल अलंकार और गुण ही नहीं अपितु रस भी काव्य में तभी रमणीयता उत्पन्न करता है, जबकि उसका विन्यास औचित्य से पूर्ण होता है।

अभ्यास प्रश्न–

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY